सहस्रनाम स्तुति नं.-1

-गणिनीपमुख श्री ज्ञानमती माताजी

-दोहा-

जन्म मरण व्याधी महा, उसके नाशन हेतु।
आप भिषग्वर विश्व में, नमूँ नमूँ शिव हेतु।।1।।

-पंच चामर छंद-

जयो जिनेश! आपही अनंत ज्ञान पुंज हो।
जयो जिनेश! आपही अनंत दर्शकुंज हो।।
जयो जिनेश! आपही अनंत वीर्यवान् हो।
जयो जिनेश! आपही अनंत सौख्यधाम हो।।2।।

स्वयंवरा अनंत ऋद्धियाँ स्वयं तुम्हें वरें।
हितंकरा अनंत सिद्धियाँ स्वयं चरण पड़ें।।
शुभंकरा ध्वनी अनंत भव्य को सुखी करें।
प्रियंकरा सभी असंख्य भव्य को सुखी करें।।3।।

गणेश आपको नमें गुणानुवाद गायके।
मुनीश आपको जपें अनूप रूप ध्यायके।।
सुरेश आपको जजें त्रिलोक पूज्य मानके।
नरेश आपको भजें त्रिकालविज्ञ जानके।।4।।

हितोपदेश आपका समूल मोह को हरे।
प्रभो! विहार आपका समस्त शोक को हरे।।
जिनेन्द्र! भक्ति आपकी अपूर्वशक्ति को भरे।
जिसके शक्ति के प्रताप मृत्यु मल्ल भी डरे।।5।।

प्रभो! अपूर्व शक्ति से करूँ त्रिकाल वंदना।
प्रभो! अपूर्व शक्ति हेतु मैं करूँ उपासना।।
प्रभो! मुझे स्वभक्त जानके संभाल लीजिये।
प्रभो! स्वयं के तीन रत्न दे खुशाल कीजिये।।6।।

-दोहा-

निजानंद पीयूष रस, निर्झरणी निर्मग्न।
'ज्ञानमती' सुख शासता, दे मुझ करो प्रसन्न।।7।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-2

-दोहा-

पूरब भव में आपने, सोलह कारण भाय।
तीर्थंकर पद पायके, तीर्थ चलाया आय।।1।।

-रोला छंद-

दर्शविशुद्धि प्रधान, नित्य प्रती प्रभु पाके।
अष्ट अंग से शुद्ध, दोष पचीस हटाके।।
मन वचकाय समेत, विनय भावना भायी।
मुक्ति महल का द्वार, खोल दिया सुखदायी।।2।।

व्रत शीलों में आप, नहिं अतिचार लगाया।
संतत ज्ञानाभ्यास, करके निजसुख पाया।।
भव तन भोग विरक्त, मन संवेग बढ़ाया।
शक्ती के अनुसार, चउविध दान रचाया।।3।।

बारह विध तप धार, आतम शक्ति बढ़ाई।
धर्म शुक्ल से सिद्ध, साधु समाधि कराई।।
दशविध मुनि की नित्य, वैयावृत्य किया था।
सर्व शक्ति से पूर्ण, बहु उपकार किया था।।4।।

श्री अर्हंत जिनेश, भक्ति हृदय में धरके।
सूरि परम परमेश, गुणस्तवन उचरते।।
उपाध्याय गुरूदेव, शिवपथ के उपदेष्टा।
प्रवचन भक्ति समेत, गुणगण भजा हमेशा।।5।।

षट् आवश्यक नित्य, करके दोष नशाया।
हानि रहित परिपूर्ण, निज कर्त्तव्य निभाया।।
मार्ग प्रभावन पाय, धर्म महत्त्व बढ़ाया।
प्रवचन में वात्सल्य, कर निज गुण प्रगटाया।।6।।

सोलह कारण साध, पंच कल्याणक पाया।
दिव्य ध्वनी से नित्य, धर्म सुतीर्थ चलाया।।
भव्य अनंतानंत, भव से पार किया है।
मुक्तिरमा को पाय, शिवपुर धाम लिया है।।7।।

मैं पूजूँ नित आप, प्रणमूं भक्ति बढ़ाऊँ।
जिस विध हो उस रीति, जिनगुण संपति पाऊँ।।
चिच्चैतन्य स्वरूप, चिन्मय ज्योति जलाऊँ।
पूर्ण 'ज्ञानमति' रूप, परम ज्योति प्रगटाऊँ।।8।।

-दोहा-

तुम प्रसाद से नाथ! अब, पूरी हो मम आश।
इसलिये तुम पद कमल, नमूँ नमूँ धर आश।।9।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-3

-दोहा-

लोकोत्तर फलप्रद तुम्हीं, कल्पवृक्ष जिनदेव।
नमूँ नमूँ तुमको सदा, करूँ भक्तिभर सेव।।1।।

-गीता छंद-

जय जय जिनेश्वर धर्म तीथेश्वर जगत् विख्यात हो।
जय जय अखिल संपत्ति के भर्ता भविकजन नाथ हो।।
लोकांत में जा राजते त्रैलोक्य के चूड़ामणि।
जय जय सकल जग में तुम्हीं हो ख्यात प्रभु चिंतामणी।।2।।

एकेन्द्रियादिक योनियों में नाथ! मैं रुलता रहा।
चारों गती में ही अनादी से प्रभो! भ्रमता रहा।।
मैं द्रव्य क्षेत्र रु काल भव अरु भाव परिवर्तन किये।
इनमें भ्रमण से ही अनंतानंत काल बिता दिये।।3।।

बहुजन्म संचित पुण्य से दुर्लभ मनुष योनि मिली।
हा! बालपन में जड़ सदृश सज्ज्ञान कलिका ना खिली।।
बहुपुण्य के संयोग से प्रभु आपका दर्शन मिला।
बहिरात्मा औ अंतरात्मा का स्वयं ही परिचय मिला।।4।।

तुम सकल परमात्मा बने जब घातिया आहत हुये।
उत्तम अतीन्द्रिय सौख्य पा प्रत्यक्ष ज्ञानी तब हुये।।
फिर शेष कर्म विनाश करके निकल परमात्मा बने।
कल-देह वर्जित निकल अकल स्वरूप शुद्धात्मा बने।।5।।

हे नाथ! बहिरात्मा दशा को छोड़ अंतर आतमा।
होकर सतत ध्याऊँ तुम्हें हो जाऊँ मैं परमातमा।।
संसार का संसरण तज त्रिभुवन शिखर पर आ बसूँ।
निज के अनंतानंत गुणमणि पाय निज में ही बसूँ।।6।।

-दोहा-

तुम प्रसाद से भक्तगण, हो जाते भगवान।
'ज्ञानमती' निज संपदा, पाकर के धनवान।।7।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-4

रोला छंद

जय जय श्री जिनदेव, तुम महिमा अतिभारी।
जय जय तुम पद सेव, करें निकट संसारी।।
जय जय मुनिगण नित्य, तुम गुण महिमा गाते।
हृदय कमल के माहिं, तुमको सहज बिठाते।।1।।

भविजन मन गृह माहिं, जब तुम वास करोगे।
उनके सब संताप, प्रभु तब क्यों न हरोगे।।
तुम तन के संस्पर्श, पवन लगे तन में जब।
अहो कौन सी व्याधि, दूर नहीं होवे तब।।2।।

सीता को जब राम, अग्नि प्रवेश कराया।
लिया आपका नाम, अग्नी नीर बनाया।।
शील माहात्म्य विकास, बहुविध कमल खिले हैं।
नाम मंत्र परसाद, जन जन हृदय मिले हैं।।3।।

वारिषेण के घात, हेतू शस्त्र चलायो।
आप नाम तत्काल, रत्नहार बनायो।।
मनोरमा जप नाम, वज्र किवाड़े खोले।
विद्युच्चर तुम नाम, जप भव बंधन तोड़े।।4।।

मनोवती ने आप, नाम जपा था जब ही।
दर्श मिला तत्काल, देवनिमित्त से तब ही।।
पूज्यपाद तुम नाम, ले निज दृष्टी पाई।
मानतुंग गुणगान, कर निज कीर्ति बढ़ाई।।5।।

बहुत भक्त तुम नाम, लेकर निज दुख चूरे।
कहूँ कहाँ तक नाम, होय कभी ना पूरे।।
मुझको भी हे नाथ! नाम मंत्र का शरणा।
नहीं शक्ति कुछ नाथ! लेश मात्र गुण वरणा।।6।।

मुझ में अगणित दोष, उन पर दृष्टि न डारो।
करो हमें संतोष, अपनो विरद निहारो।।
जब तक मुक्ति न होय, चरणों में रख लीजे।
नशे महारिपु मोह, ऐसी शक्ती दीजे।।7।।

-दोहा-

शरणागत के सर्वथा, तुम रक्षक भगवान।
'ज्ञानमती' अविचल निधी, दे मुझ करो महान।।8।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-5

-दोहा-

अति अद्भुत लक्ष्मी धरें, समवसरण प्रभु आप।
तुम धुनि सुन भविवृन्द नित, हरें सकल संताप।।1।।

-शंभु छंद-

जय जय त्रिभुवन पति का वैभव, अन्तर का अनुपम गुणमय है।
जो दर्श ज्ञान सुख वीर्य रूप, आनन्त्य चतुष्टय निधिमय है।।
बाहर का वैभव समवसरण, जिसमें असंख्य रचना मानीं।
जब गणधर भी वर्णन करते, थक जाते मनपर्यय ज्ञानी।।2।।
यह समवसरण की दिव्य भूमि, इक हाथ उपरि पृथ्वी तल से।
द्वादश योजन उत्कृष्ट कही, इक योजन हो घटते क्रम से।।
यह भूमि कमल आकार कही, जो इन्द्रनीलमणि निर्मित है।
है गंधकुटी इस मध्य सही, जो कमल कर्णिका सदृश है।।3।।
पंकज के दल सम बाह्य भूमि, जो अनुपम शोभा धारे है।
इस समवसरण का बाह्य भाग, जो अनुपम शोभा धारे है।।
सब बीस हजार हाथ ऊँचा, यह समवसरण अति शोभा है।
इकेक हाथ ऊँची सीढ़ी, सब बीस हजार प्रमित शोभे।।4।।
पंगू अन्धे रोगी बालक, औ वृद्ध सभी जन चढ़ जाते।
अंतर्मुहूर्त के भीतर ही, यह अतिशय जिन आगम गाते।।
इसमें शुभ चार दिशाओं में, अति विस्तृत महावीथियाँ हैं।
वीथी में मानस्तम्भ कहे, जिनकी कलधौत पीठिका हैं।।5।।
इक योजन से कुछ अधिक तुँग, बारह योजन से दिखते हैं।
इनमें हैं दो हजार पहलू, स्फटिक मणी के चमके हैं।।
उनमें चारों दिश में ऊपर, सिद्धों की प्रतिमाएँ राजें।
मनस्तम्भों की सीढ़ी पर लक्ष्मी की मूर्ति अतुल राजें।।6।।
ये अस्सी कोशों तक सचमुच, अपना प्रकाश फैलाते हैं।
जो इनका दर्शन करते हैं, वे निज अभिमान गलाते हैं।।
मानस्तम्भों के चारों दिश, जल पूरित स्वच्छ सरोवर हैं।
जिनमें अति सुन्दर कमल खिले, हंसादि रवों से मनहर हैं।।7।।
ये प्रभु का सन्निध पा करके, ही मान गलित कर पाते हैं।
अतएव सभी अतिशय भगवन्! तेरा ही गुरूजन गाते हैं।।
मैं भी प्रभु तुम सन्निध पाकर, संपूर्ण कषायों को नाशूँ।
प्रभु ऐसा वह दिन कब आवे, जब निज में निज को परकाशूँ।।8।।
जिननाथ! कामना पूर्ण करो, जिन चरणों में आश्रय देवो।
जब तक नहिं मुक्ति मिले मुझको, तब तक ही शरण मुझे लेवो।।
तब तक तुम चरण कमल मेरे, मन में नित स्थिर हो जावें।
जब तक नहिं केवल 'ज्ञानमती', तब तक मम मन तुम पद ध्यावें।।9।।

-दोहा-

तीर्थंकर गुणरत्न को, गिनत के पावें पार।
तीन रत्न के हेतु मैं, नमूँ अनंतों बार।।10।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-6

-दोहा-

परम चिदंबर चित्पुरुष, चिच्चिंतामणि देव।
गाऊँ तुम गुणमालिका, करूँ सतत तुम सेव।।1।।

-रोला छंद-

जय जय श्री जिनदेव, विषय कषाय विजेता।
जय जय तुम पद सेव करते श्रुत के वेत्ता।।
प्रभु तुमने छह द्रव्य, गुणपर्याय समेता।
दिव्यज्ञान से देख, बतलाते शिवनेता।।2।।
जीव तत्त्व हैं तीन, भेद कहे शुभ कामा।
बहिरातम अंतर आतम औ परमात्मा।।
प्रभु मैं दीन अनाथ, मैं दुखिया संसारी।
जन्म मरण के दुःख, मैं भरता अतिभारी।।3।।
मेरा होवे जन्म, मेरा ही मरणा हो।
मुझ में इष्ट वियोग, आदिक दुख भरना हो।।
मेरे धन जन मित्र, ये परिवार घनेरे।
मैं इनका प्रतिपाल, ये सब हैं नित मेरे।।4।।
यह बहिरात्म स्वरूप, दर्शन मोह जनित है।
इसके वश हे नाथ! मैं दुख सहा अधिक है।।
निश्चय से मैं एक चिच्चैतन्य स्वरूपी।
परमानंद स्वरूप अविचल अमल अरूपी।।5।।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सिद्ध स्वरूप हमारा।
कर्मकलंक विहीन, सकल जगत् से न्यारा।।
ये वर्णादिक रूप, पुद्गल के गुण मानें।
रागादिक भी भाव, औपाधिक ही मानें।।6।।
क्षायोपशमिक सुज्ञान, वे भी कर्म जनित हैं।
परम शुद्ध चिद्भाव, मेरा ज्ञान अमित है।।
मैं भगवान स्वरूप, जनम मरण विरहित हूँ।
चिन्मय ज्योति स्वरूप, केवलज्ञान सहित हूँ।।7।।
टंकोत्कीर्ण सुएक, ज्ञायक भाव हमारा।
सब प्रदेश में व्याप्त, सब कुछ जानन हारा।।
यद्यपि मैं व्यवहार, नय से कर्म सहित हूँ।
जनम मरण दुख पूर्ण, नाना व्याधि सहित हूँ।।8।।
फिर भी निश्चय नीति, तत्त्व स्वरूप प्रकाशे।
नय व्यवहार सदैव, धर्म तीर्थ को भाषे।।
दोनों नय सापेक्ष, वस्तु स्वरूप बतावें।
सम्यग्दृष्टी जीव, द्वय नय आश्रय पावें।।9।।
अवरित सम्यग्दृष्टि, जघन्य अंतर आत्मा।
पंचम से ग्यारंत, मध्यम अंतर आत्मा।।
बारहवें गुणस्थान, मुनिवर क्षीणकषायी।
उत्तम अंतर आत्म, जड़ से मोह नशायी।।10।।
श्री अर्हंत जिनेन्द्र, कहें सकल परमात्मा।
नित्य निरंजन सिद्ध, रहें निकल परमात्मा।।
इस विध जीव सुतत्त्व, बाकी पाँच अजीवा।
पुद्गल धर्म अधर्म, नभ औ काल सदीवा।।11।।
करिए कृपा जिनेन्द्र! बहिरात्मत्व तजूँ मैं।
अंतर आतम होय, पद परमात्म भजूँ मैं।।
जब तक निज पद नाहिं, तब तक भक्ति तुम्हारी।
अचल रहे हे नाथ! कभी न होऊँ दुखारी।।12।।

-घत्ता-

श्री जिनपद प्रीती, अविचलरीती, जो जन मन वच तन करहीं।
सो 'ज्ञानमती' से, स्वगुणरती से, निजगुण संपत्ती वरहीं।।13।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-7

-दोहा-

तीन लोक में श्रेष्ठतम, जिनवर विभव प्रधान।
प्रातिहार्य की संपदा, तीर्थंकर पहिचान।।1।।

पंचचामर-छंद

अशोक वृक्ष रत्नकाय चित्रवर्ण का धरे।
हरितमणी की पत्तियाँ हवा लगे हि थरहरें।।
नवीन कोपलों समेत राग को स्वयं धरे।
तथापि भक्त के समस्त राग भाव को हरे।।2।।

सुपूर्णचन्द्र के समान तीन छत्र शोभते।
अनेक मोतियों समेत भव्य चित्त मोहते।।
जिनेन्द्र के त्रिलोक ऐश्वर्य को बतावते।
भवाग्नि ताप भव्य जीव का सभी नशावते।।3।।

अनेक रत्न के समूह युक्त सिंह पीठ है।
सफेद सुस्फटीकरत्न से बना प्रसिद्ध है।।
अपूर्व पद्म पे अधर जिनेंद्र देव राजते।
नमो नमो पदारविंद सर्व पाप नाशते।।4।।

प्रगाढ़ भक्ति से समस्त भव्य मोद से भरे।
स्वहस्त जोड़ आपके सभी तरफ रहें घिरे।।
सुधा झरी ध्वनी सुने स्वकर्म कालिमा हरें।
शनैः शनैः निजात्म ध्याय सिद्धि कन्यका वरें।।5।।

विषय कषाय शून्य नाथ पाद शर्ण आइये।
अनंत जन्म के समस्त कर्म को नशाइये।।
इतीव सूचना करंत देव दुंदुभी बजे।
सुभव्यजीव कर्ण से सुने प्रमोद को भजें।।6।।

अनेक देव भक्ति से सुपुष्प वृष्टि को करें।
समस्त पुष्प वृंत को अधो किये धरा गिरे।।
खिले खिले सुवर्ण पुष्प हर्ष को बढ़ावते।
सुदेख देख भक्त वृंद, पुण्य को बढ़ावते।।7।।

प्रभासुचक्र नाथ आप ज्योतिपुंज रूप हैं।
अनेक सूर्य कोटि की प्रभा हरे अनूप हैं।।
सुभव्य को सदैव सात भव दिखावता रहे।
जिनेंद्र का अपूर्व तेज नित्य पावता रहे।।8।।

सुकुंद पुष्प के समान श्वेत चामरों लिये।
सुयक्षदेव ढोरते अतुल्य भक्ति को लिये।।
चंवर सदैव ऊर्ध्व जाय भव्य सूचना करें।
जिनेंद्र भक्त नित्य एक ऊर्ध्व ही गती धरें।।9।।

सुआठ प्रतिहार्य औ अनंत विभव धारते।
स्वभक्त को भवाब्धि से तुरन्त आप तारते।।
सुनी सुकीर्ति आपकी इसीलिए खड़ा यहाँ।
बस एक आश पूरिये न आवना हो फिर यहाँ।।10।।

-दोहा-

स्वात्म सौख्य पीयूष रस, निर्झरणी वच आप।
'ज्ञानमती' सुख पूरिये, मिटे सकल संताप।।11।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-8

चाल-हे दीनबन्धु.....

हे नाथ! आप ही तो सकल इंद्र वंद्य हैं।
इस भू पे अतः आप ही तो धन्य धन्य हैं।।
सम्पूर्ण अतिशयों के आप ही तो सद्म हैं।
इस हेतु सभी पूजते तुम पाद पद्म हैं।।1।।

प्रभु आपके माहात्म्य से असमय में बगीचे।
सब ऋतु के फूल फल से वे फूले फले दिखें।।
रज आदि दूर करती सुखद वायु चले है।
सब जीव वैर छोड़ के आपस में मिले हैं।।2।।

दर्पण के सदृश भूमि स्वच्छ रत्नमय हुई।
गंधोद की वर्षा भी मेघ देवकृत हुई।।
शल्यादि खेत भी फलों के भार से झुके।
सब जीव भी आनन्द से तो झूम ही उठे।।3।।

शीतल पवन वायुकुमार देव चलाते।
सरसर कुँआ भी स्वच्छ जल से पूर्ण हो जाते।।
उल्कादि धूम रहित गगन स्वच्छ सही है।
जब जीवों को रोगादि की बाधायें नहीं हैं।।4।।

सर्वाण्हयक्ष शिर पे धर्मचक्र को धरें।
चारों तरफ के चक्र दिव्य रश्मियाँ धरें।।
शुभ श्रीविहार के समय तुम पाद के तले।
सुरकृत सुगंधि युक्त भी सुवरण कमल खिलें।।5।।

ये देव रचित तेरहों अतिशय महान हैं।
जो आपके अनंत गुणों में प्रधान हैं।।
कैवल्यज्ञान उदित हो जिस वृक्ष के नीचे।
वो ही अशोक वृक्ष कहाता है तभी से।।6।।

जो आपका आश्रय सदा लेते हैं भुवन में।
उनके कहो क्यों शोक रहेगा कभी मन में।।
इस हेतु से तुम पाद का आश्रय लिया मैंने।
निज 'ज्ञानमती' हेतु ही विनती किया मैंने।।7।।

-दोहा-

भक्तों के वत्सल तुम्हीं, करुणासिंधु जिनेश।
करो पूर्ण यह याचना, फेर न माँगू लेश।।8।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-9

-सोरठा-

नित्य निरंजनदेव, अखिल अमंगल को हरें।
नित्य करूँ मैं सेव, मेरे कर्मांजन हरें।।1।।

-सखी छंद-

जय जय जिन देव हमारे, जय जय भविजन बहु तारें।
जय मुक्तिरमापति देवा, शतइंद्र करें तुम सेवा।।2।।

मुनिवृंद तुम्हें चित धारें, भविवृंद सुयश विस्तारें।
सुरनर किन्नर गुण गावें, किन्नरियाँ बीन बजावें।।3।।

भक्तीवश नृत्य करे हैं, गुण गाकर पाप हरे हैं।
विद्याधर गण बहु आवें, दर्शन कर पुण्य कमावें।।4।।

भव भव के त्रास मिटावें, यम का अस्तित्त्व हटावें।
जो जिनगुण में मन पागे, तिन देख मोह रिपुभागे।।5।।

जो प्रभु की पूज रचावें, इस जग में पूजा पावें।
जो प्रभु का ध्यान धरे हैं, उनका सब ध्यान करे हैं।।6।।

जो करते भक्ति तुम्हारी, वे भव भव में सुखियारी।
इस हेतु प्रभो तुम पासे, मन के उद्‌गार निकासे।।7।।

जब तक मुझ मुक्ति न होवे, तब तक सम्यक्त्व न खोवे।
तब तक जिनगुण उच्चारूँ, तब तक मैं संयम धारूँ।।8।।

तब तक हो श्रेष्ठ समाधी, नाशे जन्मादिक व्याधि।
तब तक रत्नत्रय पाऊँ, तब तक निज ध्यान लगाऊँ।।9।।

तब तक तुम ही मुझ स्वामी, भव भव में हो निष्कामी।
ये भाव हमारे पूरो, मुझ मोह शत्रु को चूरो।।10।।

-घत्ता-

जय जय चिन्मूरति, गुणमति पूरित, जय जिनवर वृषचक्रपती।
जय 'ज्ञानमती' धर, शिवलक्ष्मीवर, भविजन पावें सिद्धगती।।11।।

सहस्रनाम स्तुति नं.-10

-दोहा-

घाति चतुष्टय घातकर, प्रभु तुम हुए कृतार्थ।
नव केवल लब्धी रमा, रमणी किया सनाथ।।1।।

चाल-हे दीनबन्धु श्रीपति.....

प्रभु दर्श मोहनीय को निर्मूल किया है।
सम्यक्त्व क्षायिकाख्य को परिपूर्ण किया है।।
चारित्रमोह का विनाश आपने किया।
क्षायिक चारित्र नाम यथाख्यात को लिया।।2।।

संपूर्ण ज्ञानावरण का जब आप क्षय किया।
कैवल्य ज्ञान से त्रिलोक जान सब लिया।।
प्रभु दर्शनावरण के क्षय से दर्श अनन्ता।
सब लोक औ अलोक को लखते हो तुरन्ता।।3।।

दानांतरायनाश के अनंत प्राणि को।
देते अभय उपदेश तुम कैवल्य दान जो।।
लाभांतराय का समस्त नाश जब किया।
क्षायिक अनंत लाभ का तब लाभ प्रभु लिया।।4।।

जिससे परम शुभ सूक्ष्म दिव्य नंत वर्गणा।
पुद्गलमयी प्रत्येक समय पावते घना।।
जिससे न कवलाहार हो फिर भी तनू रहे।
कुछ हीन पूर्व कोटि वर्ष तक टिका रहे।।5।।

भोगांतराय नाश के अतिशय सुभोग हैं।
सुरपुष्पवृष्टि गंध उदक वृष्टि शोभ हैं।।
पद के तले वर पद्म रचें देवगण सदा।
सौगंध्यशीत पवन आदि सौख्य शर्मदा।।6।।

उपभोग अंतराय का क्षय हो गया जभी।
प्रभु सातिशय उपभोग को भी पा लिया तभी।।
सिंहासनादि छत्र चमर तरू अशोक हैं।
सुरदुंदुभी भाचक्र दिव्य ध्वनि मनोज्ञ हैं।।7।।

वीर्यान्तराय नाश से आनन्त्य वीर्य हैं।
होते न कभी श्रांत आप महावीर हैं।।
प्रभु चार घाति नाश के नव लब्धि पा लिया।
आनन्त्य ज्ञान आदि चतुष्टय प्रमुख किया।।8।।

प्रभु आप सर्वशक्तिमान कीर्ति को सुना।
इस हेतु से ही आज यहाँ मैं दिया धरना।।
अब तारिये न तारिये यह आपकी मरजी।
बस 'ज्ञानमती' पूरिये यदि मानिये अरजी।।9।।

-दोहा- गुण समुद्र के गुण रतन, को गिन पावे पार।
मात्र अल्पमती मैं पुनः, क्या कह सकूँ अबार।।10।।

सहस्रनाम स्तुति

चाल-हे दीनबन्धु.....

जै जै प्रभो! तुम सिद्धि अंगना के कांत हो।
जै जै प्रभो! आर्हन्त्य रमा के भी कांत हो।।
हे नाथ! आपकी सभा अनुपम विशाल है।
उसके लिए इस जग में न कोई मिसाल है।।1।।

पृथ्वी से पाँच सहस धनुष उपरि गगन में।
प्रभु आपका समवसरण है मात्र अधर में।।
सोपान पंक्ति बीस सहस श्रेष्ठ मणिमयी।
बस एक मुर्हूत में सभी चढ़ते हैं सही।।2।।

बहुरत्नमयी धूलिसाल कोट प्रथम है।
उसमें हें चार द्वार नाम विजय आदि हैं।।
चारों दिशा में चार मानस्तम्भ बताये।
जो कोस अड़तालीस तक भी दर्श कराये।।3।।

है चैत्यभवन भूमि रम्य द्रह वनादि से।
जिन बिंबनिलय से पवित्र तुम प्रसाद से।।
आगे है रम्य खातिका जो स्वच्छ जल भरी।
फूले कमल से हंस आदि रव से चित्त हरी।।4।।

है तीसरी लतावनी वकुलादि कुसुम से।
बल्ली के मंडपों से रम्य व्याप्त सुरभि से।।
उद्यानभूमि चौथि चार दिश में चार वन।
अशोक सप्तछद तथा चंपक व आम्रवन।।5।।

इनमें है चैत्यवृक्ष जैन बिंब को धरें।
मुनिगण भी जिनकी वंदना बहुभक्ति से करें।।
आगे है ध्वजा भूमि जो अगणित ध्वजा धरें।
हंसादि चिन्ह दश तरह से युत ध्वजा धरें।।6।।

दशविध सुकल्पतरु से कल्पवृक्ष भू कही।
सिद्धार्थ वृक्ष सिद्ध बिंब युक्त धर रही।।
इनकी जो वंदना करें त्रिकाल भक्ति से।
वे सर्वसिद्धि प्राप्त करें स्वात्म शक्ति से।।7।।

आगे की भूमि में कहीं महलों की पंक्तियाँ।
जिन भक्ति नृत्य आदि करें देव देवियाँ।।
भू आठवीं जो बारहों कोठों को है धरे।
मणि स्फटिक की भित्ति से विभक्त गण धरे।।8।।

कोठे प्रथम में श्रीगणेश साधुगण रहें।
क्रम से है कल्पवासिनी देवी वहाँ रहे।।
है तीसरे में आर्यिका औ श्राविका घनी।
फिर ज्योतिषी औ व्यंतरी व भवनवासिनी।।9।।

फिर व्यंतरों ज्योतिष्क भवनवासि के कोठे।
आगे हैं कल्पवासि मनुष औ पशू कोठे।।
द्वादश गणों के जीव ये चारों तरफ घिरे।
जिनदेव की वाणी सुनें सम्यक्त्व गुण धरें।।10।।

आगे की प्रथम पीठ पे यक्षेन्द्र खड़े हैं।
चउ दिश में यक्ष धर्मचक्र शिर पे धरे हैं।।
हैं पीठ दूसरे पे चिन्ह युक्त ध्वजायें।
तृतीय पीठ को भी रत्नरचित बतायें।।11।।

इसके उपरि है गंधकुटी नाथ की बनी।
जिस पर हैं चमर आदि व बजती हैं किंकणी।।
मणिस्फटिक से बना रत्नजटित सिंहासन।
जो गंध कुटी मध्य में है कमल इवासन।।12।।

इस पे जिनेन्द्र चार अंगुल अधर राजते।
त्रैलोक्यनाथ अतुल विभवयुत विराजते।।
चौंतीस अतिशयों व आठ प्रातिहार्य से।
आनन्त्य चतुष्टय सहित अनुपम विभासते।।13।।

ये ग्यारहों हि भूमियाँ अद्भुत निकेत हैं।
इन मध्य मध्य कोट त्रय व पाँच वेदि हैं।।
सब रत्न की रचना वहाँ नव निधि भरी पड़ीं
गोपुर व द्वार नाट्य शालायें बड़ी बड़ी।।14।।

प्रेक्षा सदन अभिषेक सदन आदि वहाँ पे।
मंडप सभागृहादि भी श्रुत केवलि ताके।।
वापी सरोवरों में वहाँ फूल खिले हैं।
वापी में कर स्नान सात भव भी दिखे हैं।।15।।

कोठों का लघू क्षेत्र तो भी जिन प्रभाव से।
प्राणी असंख्य बैठते निर्वैर भाव से।।
आतंक रोग भूख प्यास आदि ना वहाँ।
मिथ्यात्वि असंज्ञी अभव्य शूद्र ना वहाँ।।16।।

अंधे भी वहाँ देखते गूंगे भी बोलते।
लंगड़े चढ़े सब सीढ़ियाँ बहिरे भी हैं सुनते।।
विष भी वहाँ निर्विष बने सब शोक टले हैं।
सब जात विरोधी वहाँ आपस में मिले हैं।।17।।

स्तूप बनें तीन लोक आदि के वहाँ।
जो सर्व सृष्टि रूप धरें शोभते वहाँ।।
बहु धूपघड़ों में सभी सुधूप खे रहे।
निज कर्म धूप को उड़ा आनन्द ले रहे।।18।।

इत्यादि विभव है अपूर्व कौन कह सके।
गणधर गुरु सुरगुरु भी नहिं पार कर सके।।
जो एक बार समोसरण में चले गये।
वे भव्य मोक्ष पथिकों की कोटी में आ गये।।19।।

जो भक्त एक बार भी तुम अर्चना करें।
निश्चित वे कर्म प्रकृतियों की खंडना करें।।
फिर वे कभी यमराज के चंगुल में ना पड़ें।
हो पूर्ण ज्ञानमती मोक्ष महल में चढ़ें।।20।।

-दोहा-

सर्व सात सौ बीस जिन, पंचकल्याणक ईश।
हो कल्याणक कल्पतरु, नमूँ नमूँ नत शीश।।21।।